एग्री आर्टिकल्स
(कृषि लेखों के लिए ई-पत्रिका)
वर्ष: 03, अंक: 01 (जनवरी-फरवरी, 2023)
www.agriarticles.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
© एग्री आर्टिकल्स, आई. एस. एस. एन.: 2582-9882

ग्रामीण क्षेत्रों के लिए कृषि आधारित उद्यमिता विकास

(*सुमन चौधरी[1], ओम प्रकाश[2] एवं प्रियंका कांटवा[3])
[1]पीएचडी स्कॉलर, एसकेआरएयू, बीकानेर
[2]एसआरएफ, आईसीएआर-अटारी जोन- II, जोधपुर
[3]एमएससी, रानीलक्ष्मी बाई केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झांसी
*संवादी लेखक का ईमेल पता: sumanchaudhary214@gmail.com

महात्मा गाँधी ने कहा कि भारत गाँवों में रहता है। अतः जब तक गाँवों का विकास नहीं किया जायेगा तब तक भारतवर्ष की उन्नति कैसे संभव है। भारत में जब ग्रामीण विकास की चर्चा होती है तो उसका अर्थ सिर्फ खेत–खलिहान और सिंचाई आदी से नहीं लिया जा सकता और न ही प्राथमिक विद्यालयों, स्वास्थ्य केंद्रों का वर्णन कर देने से ग्राम्य विकास की तस्वीर उभरती है। भारत कृषि प्रधान देश अवश्य है पर यहाँ खेत जितने छोटे हैं उपज जितनी कम है और खेती पर निर्भरता जितनी अधिक है उसे देखते हुये केवल खेती पर आश्रित होने पर न व्यक्ति का पेट भर सकता है और न ही परिवार का पालन पोषण हो सकता है तथा न ही गाँवों का उत्थान हो सकता है। ग्रामीण अंचल में अगर जनता का जीवन स्तर उठाना हैं समृद्धि एवं खुशहाली लानी है तथा विकास व रोजगार के साधन बढ़ाने हैं तो गाँवों में लघु कुटीर एवं खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों को बढ़ावा देना होगा। लघु एवं कुटीर उद्योग ग्रामीण विकास की धुरी है। ग्रामीण विकास में इनका वही महत्व है जो पूरे देश के औद्योगिक विकास में बड़े उद्योगों का है। हमारा देश एक विकासशील है और एक विकासशील देश के लिए उद्योगों का क्या महत्व होता है, यह महात्मा गाँधी की निम्नपंक्तियों द्वारा द्वारा स्पष्ट हो जाता है।

ग्रामीण विकास में लघु एवं कुटीर उद्योगों का महत्व

ग्रामीण जीवन की परिस्थितियाँ और आवश्यकताएं ऐसी होती हैं कि वहाँ सामान्यतया बड़े और मध्यम दर्जे के उद्योगों के लिए उपयुक्त सुविधाएं नहीं होती हैं। ग्रामीण अंचल में ऐसे उद्योग ही विकसित हो सकते है जो शहरी सुविधाओं से दूर बसे गाँवों की आर्थिक जरूरतों को पूरा कर सकें। एक और कारण है जिससे गाँवों में लघु व कुटीर उद्योगों की महत्ता बढ़ जाती है। किसान का जीवन केवल कृषि आधारित होता है। किन्तु कृषि से उतना काम नहीं मिलता कि वह अपना सारा समय बस कृषि में ही लगाये रखे न ही इतने आर्थिक साधन होते हैं कि वह बड़े उन्नत तरीके से कृषि कार्य कर सकें। सिंचाई की अनेक सुविधाओं के बाद भी किसानों की उपज आज भी वर्षा पर अधिक निर्भर रहती है। ऐसी स्थिति में किसानों के पास खेती के अतिरिक्त आमदनी के स्रोत नहीं होते है। राजस्थान राज्य में जहाँ कृषि परिस्थितियाँ विषम हैं उद्यमिता विकास आर्थिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। लघु और कुटीर उद्योग, ग्रामीण परिवारों की आय का अतिरिक्त साधन बनने के साथ ही, रोजगार के स्रोत भी बनते हैं। जोत की सीमा कम होते जाने से अधिकांश परिवारों के लिए खेती से इतनी आमदनी नहीं हो पाती कि उससे बढ़ते परिवार की आवश्यकताएं पूरी की जा सकें इसलिए, खेतिहर मजदूरों की संख्या और उनका गांवों से शहरों की ओर पलायन भी बढ़ता जा रहा है। इससे एक ओर गांवो में गरीबी फैलती है, पारिवारिक संतुलन बिगड़ते हैं, वहीं दूसरी ओर शहरों में काम की तलाश में जाने वाले ग्रामीण शहरों के क्लिष्ट जीवन से कुंठाग्रस्त होकर वहां की समस्याओं में बृद्धि करते हैं। वे गांव की अपनी जड़ों से कट जाते हैं,लेकिन शहरी जीवन में भी आत्मसात नहीं हो पाते। इससे गांव और शहर, दोनों जगह असंतुलन और असंतोष बढ़ता है इस स्थिति में सुधार का एक ही उपाय है कि ग्रामीण क्षेत्रों में लघु व कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देकर ग्रामीण विकास में उनके योगदान में वृद्धि

की जाए। यह सच है कि देश में बड़े उद्योगों का व विस्तार और विकास दिखाई अधिक देता है लेकिन उसका एक बड़ा कारण इन बडे उद्योगों के वारे में किया जा रहा प्रचार भी है जबकि लघु उद्योगों, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित इकाइयों, के बारे में उतना प्रचार नहीं होता। इन ग्रामीण उद्योगों का कार्यक्षेत्र और प्रभाव क्षेत्र सीमित होने के कारण उनहें संभवतः उतने व्यापक प्रचार की आवश्यकता भी नहीं होती।फिर भी आंकड़े इस बात के साक्षी हैं कि देश में कुल मिलाकर हो रहे औद्यौगिक विकास में लघु और ग्रामीण उद्योगों का योगदान निरंतर बढ़ता जा रहा है। देश में कुल औद्योगिक माल के निर्माण, उसकी बिक्री और निर्यात तीनों क्षेत्रों में लघु उद्योगोंका महत्व प्रतिवर्ष बढ़ता जा रहा है। लघु उद्योग क्षेत्र कुल औद्योगिक उत्पादन में लगभग 40 प्रतिशत और कुल निर्यात में करीब 35 प्रतिशत का योगदान कर रहे हैं।़ देश की व्यवस्था में लघु एवं कुटीर उ उद्योग केवल गाँव आधारित हैं बल्कि इनके माध्यम से देश के ग्रामीण तथा सुदूर क्षेत्रों में उद्यामिता विकास हुआ है। इस सेक्टर में जिसमें लघु उद्योग, हथकरघा, हस्तशिल्प कुटीर, ग्रामीण उद्योग शामिल हैं। होटल, पर्यटन, फिल्म खनिज विकास पोल्ट्री को विशेष उद्योग का दर्जा दे दिया गया है तथा निग्रात और कृषि आधारित उद्योगों को वरीयता पर प्रोत्साहित किया जा रहा है।

निर्जलन/शुष्कन उद्योग

भारत का फल–सब्जी उत्पादन में विश्व में दूसरा स्थान है । चीन के पश्चात भारत का फल एवं सब्जी उत्पादन में दूसरा स्थान होना अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारत में विश्व का 8: फल उत्पादन एवं 15: सब्जी उत्पादन होता है परंतु पर्याप्त प्रबंधन एवं प्रसंस्करण के अभाव में 20–30: नष्ट हो जाता है इसका कारण समुचित फसल भंडारण की कमी, प्रसंस्करण सुविधाओं का अभाव अवश्यकतानुरूप फसल उपरांत प्रोद्योगिकी का उपयोग न होना तथा फसल उपरांत प्रौद्योगिकी का समुचित प्रचार–प्रसार न होना और प्रशिक्षित जन शक्ति की कमी है। यदि हम राजस्थान की बात करें तो यहाँ पानी की कमी के कारण व अन्य वातावरणीय परिस्थितियों की वजह से फल व सब्जियों का उत्पादन कम ही हो पाता हैं। नर्जलन फलों तथा सब्जियों के परिरक्षण के लिए ज्ञात सबसे पुराने एवं महत्वपूर्ण तरीकों में से एक है। ज्यादातर फलों एवं सब्जियों में 80–95 प्रतिशत के मध्य जल होता है। सुखाने का प्रमुख लक्ष्य फलों तथा सब्जियों से उस सीमा तक मुक्त जल को हटाना है जहां सूक्ष्म जैव बचते नहीं है तथा उनका पुनरू प्रजनन नहीं होता है। साथ ही साथ कुल ठोस पदार्थ अर्थात चीनी तथा जैव अम्ल संकेद्रित हो जाते है। इस तरह सुखाने के फलस्वरूप इसकी भार एवं मात्रा कम हो जाती है एवं इस प्रकार बढ़ी हुई अनुरक्षण गुणवत्ता, बढ़े हुए स्थानीय मूल्य संयोजन एवं ग्रामीण जनसंख्या विशेषकर महिलाओं को रोजगार के अवसर, अतिरिक्त परिवहन पर बचत होती है, आधिम्य एवं परिवहन के दौरान क्षति कम होती है, बाजार खतरों को कम करती है, नकद आय प्रदान करता है तथा ग्रामीण विकास में योगदान करता है। लगभग सभी फलों तथा सब्जियों को सुखाया जा सकता है। निर्जलित उत्पाद पकने पर पुनरू संपोषित हो जाते हैं। इसलिए सभी निर्जलित उत्पादों का उपयोग स्वाद तथा खुश्बू में किसी परिवर्तन के बिना सब्जी तथा कढ़ी निर्माण में किया जा सकता है। यांत्रिकीय उपस्कर में तैयार किए गए फल अथवा सब्जी को निर्जलक कक्ष के भीतर लगी ट्रे में रख दिया जाता है जिसमें तापमान, वायु की नमी एवं दर को नियंत्रित किया जा सकता है । यांत्रिकीय निर्जलन कहीं भी किया जा सकता है। यह धूप शुष्कन से काफी तेज है। उत्पाद बेहतर गुणवत्ता के होते हैं क्योंकि इसे नियंत्रित तापमान एवं आर्द्रता में किया जाता है। मौसम पर निर्भर नहीं होता है। निर्जलित उत्पाद पकने पर पुनरू संघटित हो जाते हैं। सभी निर्जलित उत्पादों का उपयोग स्वाद एवं खुश्बू बिना किसी परिवर्तन के सब्जियों तथा कढ़ी को तैयार करने में किया जा सकता है। निर्जलन के फलस्वरूप फल तथा सब्जियां खाली मौसम में भी उपलब्ध रहती हैं। बिक्री की परेशानी को कम करती है तथा लोगों की पोषकीय स्थिति को सुधारने में मदद करती हैं। निर्जलित उत्पादों का भण्डारण एवं उपयोग गैर मौसम में भी किया जा सकता है।

समुदाय द्वारा उगाए गए स्थानीय फलों तथा सब्जियों की उपयोगिता को समझने के लिए आवश्यकता मूल्यांकन सर्वेक्षण किए जाने चाहिए। बाजार में बेची गई सब्जियों एवं फलों की मात्रा तथा बेकार हुई तथा स्व उपयोग की मात्रा के बारे में सूचना मांगी जानी चाहिए। आवश्यकता मूल्यांकन सर्वेक्षण में समुदाय द्वारा उपयोग में लाई गई वर्तमान तकनीकों की समझ आवश्यक है। फलों तथा सब्जियों की बर्वादी को रोकने के लिए सर्वेक्षण में निर्जलित उत्पादों के लिए संभावित बाजारों एवं उपभोक्ताओं को भी समझने का प्रयास किया जाना चाहिए। आवश्यकता सर्वेक्षण में समुदाय में उपलब्ध

स्थानीय संसाधनों की भी जानकारी जैसे स्वच्छ जल, सर्वेक्षण के जरिए कच्ची सामग्री अधि प्राप्तिध्यूनिटों (संभावित किसानों का पता चलाना) जो निर्जलन के लिए फल तथा सब्जियां प्रदान करेंगे आदि जो प्रसंस्करण केंद्र के लिए आवश्यक हैं के बारे में सूचना मांगी जानी चाहिए। निर्जलित उत्पादों के विपणन के लिए संभावित बाजारों, विशेषकर ग्रामीण बाजारों का निर्धारण किया जाना चाहिए । इसके अतिरिक्त, निर्जलित फलों तथा सब्जियों के विपणन के लिए संभावित क्रेताओं, सरकारी विभागों, संस्थाओं तथा निजी संस्थाओं से सम्पर्क भी स्थापित किया जाना चाहिए। परियोजना प्रस्तावों को प्रस्तुत करते समय निर्जलित फलों तथा सब्जियों के विपणन के लिए नीति के बारे में सूचना मांगी जानी चाहिए तथा सुनिश्चित करे कि भावी विपणन सुनिश्चित हो। उत्पादों के व्यापक विपणन के लिए अपेक्षित एफ पी ओ प्रमाणन प्राप्त होना सुनिश्चित होना चाहिए।

फल तथा सब्जी परिरक्षण व प्रसंस्करण

शुष्क क्षेत्र के रहवासियों ने सदियों पहले से अपने भोजन को संपूर्ण एवं सुरूचिपूर्ण बनाने के लिये विभिन्न प्रकार के मूल्य संर्वधन तकनीकियाँ विकसित कर ली थी जिनका उद्देश्य फसल के तैयार होने से पहले व अकाल पड़ने की स्थिति से पहले भोजन को संरक्षित करना था। इससे पता चलता है कि हमारे पूर्वज भी मूल्य संवर्धन के महत्व को समझते थे व इसे अपनाते थे। फल व सब्जियों का उत्पादन मौसम के अनुसार होता है। यदि इन्हें समय पर परिरक्षित कर लिया जाये तो इनका न केवल घरेलू स्तर पर उपयोग कर सकते हैं, बल्कि इनका विपणन कर अधिक आय भी प्राप्त कर सकते है। फल व सब्जियों के मूल्य संवर्धित उत्पाद भी आय प्राप्त करने का अच्छा साधन है। जैसे जैली, स्क्वैश, लाइम ज्यूस कार्डियल, मुरब्बा, कैण्डी, सिरका, अचार, पापड़ आदि। इन्हे बनाने की तकनीकी सरल होने के साथ–साथ अधिक पूंजी निवेश के बिना भी स्थापित की जा सकती है तथा अच्छी आय भी प्राप्त की जा सकती है। संरक्षण के द्वारा फलों तथा सब्जियों के गुणवत्ता के रक्षण में सुधार करने में मदद मिलेगी। संरक्षण के प्रमुख कारणों में एक कारण अतिरिक्त उत्पाद को उपयोग के लिए भण्डारित किया जा सकता है। संरक्षण से भोजन की विविधता में वृद्धि होती है तथा इससे उन क्षेत्रों में खाद्य मदें उपलब्ध होती हैं जहां उन्हें उगाया नहीं जाता है। संरक्षण से खाद्यों का परिवहन एवं भण्डारण आसान हो जाता है। फलों एवं सब्जियों के संरक्षण से ग्रामीण महिलाओं एवं युवाओं के लिए रोजगार पैदा होता है। फलों तथा सब्जियों की गुणवत्ता के रख रखाव में वृद्वि के लिए खाद्य परिरक्षण के विभिन्न तरीकों का इस्तेमाल किया जा रहा है। लवण तथा शर्करा, डिब्बाबंदी में वृद्वि करके प्रशीतन, हिमीकरण, पास्च्युरीकरण, निष्कीटन, निर्जलन, परिरक्षण कुछ तरीके हैं जिन्हें फलों तथा सब्जियों के परिरक्षण के लिए इस्तेमाल में लाया जाता है। लवण तथा शर्करा के द्वारा फल तथा सब्जी परिरक्षण के किए कौशल व तकनीक की जानकारी होना अत्यंत आवश्यक हैइसके अंतर्गत फल एवं सब्जियों को खराब न होने देने तथा उनसे विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थ तैयार करने की विधियों का अधध्ययन किया जाता है फल सब्जियों का परिरक्षन एक निश्चित वातावरण में विशिष्ट तकनीकी क्रियाओं द्वारा किया जाता है फलों एवं सब्जियाँ क्यूँ खराब होते हैं व इन्हें को खराब होने से कैसे बचाया जाए किन किन विधियों द्वारा विभिन्न फल सब्जियों को संरक्षित किया जा सकता है व उनके कौन से उत्पाद बन सकते हैं इसकी जानकारी के लिए फल परिरक्षन की व्यवहारिक जानकारी बहुत आवश्यक है। फल एवं सब्जियों का शीतलन, हिमीकरन , कैनिंग , बोतलबंद उत्पादों का निर्माण , जूस , मार्म्लेड, स्कवैश, आदि का निर्माण इसके अंतर्गत आता है। परियोजना का आकार तथा परिव्यय, बाजार के आकार, प्रौद्योगिकी के प्रकार तथा आटोमेशन की डिग्री (हिस्सा) पर निर्भर करताहै. उद्यमी परियोजना क्षेत्र में कच्चे माल की उपलब्धता एवं बाजार की मांग के आधार पर उत्पाद के प्रकार के बारे में निर्णय ले सकते है । नए उद्यमी एक व्यक्ति के रुप में अकेलेमालिकाना संगठन, पार्टनरशिप फर्म अथवा ज्वाइंट स्टाक कंपनी के तोर पर अपना कारोबार शुरु कर सकते हैं. अकेलें और मालिकाना संगठन का अपना पैन (च।छ) नंबर होना चाहिए तथा बैंक खाता भी होना चाहिए पार्टनरशिप फर्मो को राज्य सरकार के स्टांप एक्ट के अनुसार नान ज्यूडिशियल स्टांप पेपर पर इंडियन पार्टनरशिप एक्ट 1932 के अनुसार भागीदारी विलेख निष्पादित करना चाहिए तथा पार्टनरशिप फर्म को कारपोरेट कार्य मंत्रालय में पंजीकृत कराना चाहिए. ज्वाइंट स्टाक कंपनी, दि. कंपनी एक्ट 2013 के अनुसार प्राइवेट लिमिटेड, पब्लिक लिमिटेड अथवा प्रोडयूसर्स कंपनी के तौर पर गठितकीजा सकती है जिसका ब्यौरा लिंक के रुप में मंत्रालय की वेबसाइट पर दिया गया है। प्रसंस्कृत उत्पादों के लिए (प्रोसेस्ड प्रोडक्टस) फूड सेफ्टी एंड स्टैंडर्ड अथॉरिटी ऑफ इंडिया (ै।ै) एक्ट 2006 का पालन किया जाना चाहिए. भारत में सभी खाद्य उत्पादों के

लिए एफ एस एस ए आई एक्ट लागू होताहै. यह न्यूनतम मानदंडों, परिचात्मन प्रक्रिया, खाद्य सुरक्षा मानदंडों, पैकेजिंग तथा लेबलिंग मानदंडों के बारे में विनिर्देश निर्धारित करता है. कई इकाइयों को फूड सेफ्टी एंड स्टैंडडैर्स अथॉरिटी ऑफ इंडिया से एक लाइसेंस लेना पडता है जिसे एफ एस एस ए आई नंबर कहते हैं. लाइसेंसिंग की प्रक्रिया एफ एस एस ए आई के वेबसाइट पर दी गई है। फल और सब्जी का विपणन बहुत बडी चुनौती होता है. बाजार में पहले से कई लोकप्रिय ब्रांड मौजूद हैं जो नये खाद्य उत्पाद (न्यू फुड प्रोडक्टस) की राह में बडी रूकावट का काम करते हैं. भारतीय बाजार आयातित उत्पादों से भरा पडाहै. अतरू, नए लोगों को अपने उत्पादों के विपणन को अतधिक महत्व देना पडता है. प्रोडक्टस की ब्रैडिंग एवं मार्केटिंग के लिए किसी प्रोफेशनल एजेंसी की सेवाएं लेना बेहतर रहता है. इकाइयों को अपने प्रोडक्टस के विज्ञापन और प्रोमोशन के लिए भी पर्याप्त बजट का आबंटन करना चाहिए.

पौधशाला में पौधे (नर्सरी) तैयार करने की तकनीक

भारत में बागबानी और बागानों का क्षेत्र व्यापक और बहुमुखी है. इनमें, फल, सब्जियाँ, आलू, कन्द, सजावटी, पौधें, औषधीय एवं सुगन्धित पौंधे, मसाले, बागानी, फसलें, कुकुरमुत्ता आदि हैं. शीतोष्ण, फल, सब्जियाँ, फूल ओर मसाले उत्तरी हिमालय क्षेत्र में उगाये जाते हैं जबकि शेष भारत में उपोष्ण) और उष्णकटिबन्धी फल, सब्जियाँ, सजावटी पौंधे कुकुरमुत्ता, मसालें की खेती की जाती है. परंपरागत फल फसलों के अंतर्गत उष्णकटिबन्धी (जतवचपबंस) और उपोष्ण फल जैसे आम, केला, अनार, अनन्नास, अंगूर, नीम्बू–प्रजाति के फल आदि आते हैं. इनकी खेती से सिंचित और वर्षाधीन स्थितियों दोनों में छोटे भू–जोत को टिकाऊ आजीविका उपलब्ध कराने की काफी संभावनाएं है. फिर भी, विभिन्न राज्यों में इन फसलों के लिए कृषि क्षेत्र बढाने के संबंध में कई समस्याएं है. इनमें बारहमासी बागवानी वाली फसलों के लिए गुणवत्ता वाली पौधे सामग्री का समय पर उपलब्ध न होना, मानकीकरण व प्रमाणीकरण की अनुपलब्धता आदि हैं. हालाँकि कई राज्य सरकारों ने संबंधित विभागों के अंतर्गत पौधशाला लगाने से संबंधित सुविधाओं की स्थापना की है, लेकिन अच्छी गुणवत्तावाली पौध सामग्री की माँग सरकारी पौधशाला में उगने वाले पौधों के मुकाबले बहुत ज्यादा है. अतरू व्यावसायिक पौधशाला इकाई की स्थापना के लिए अच्छी संभावनाएं हैं. अच्छी गुणवत्ता–वाली पौध सामग्री के लिए ऊंचे मूल्य प्राप्त होते हैं. अतरू वाणिज्यिक पौधशाला में निवेश करना व्यावहरिक और लाभप्रद कार्य है. फलदार तथा वानिकी से संबंधित पौधो की पौधशाला का विकास एक उद्यम के रूप में अपनाया जा सकता है। आमतौर पर एक भूमिगत बेड में (10 ग 3 ग 1 मीटर) में 1 हजार पौधे तैयार कर सकते हैं। इसके लिये तीन चीजों की आवश्यकता होती है : भूमि, बीज व उपयुक्त वातावरण। थोड़ी सी लागत लगाकर परिश्रम से वैज्ञानिक तकनीकी का प्रयोग कर पौधशाला का निर्माण किया जा सकता है व नर्सरी से पौध बेचकर अच्छी आय कमा सकते हैं। नर्सरी बनाने हेतु 4–5 बार गुड़ाई करके मिट्टी को अच्छी प्रकार से भुरभुरा बना लेना चाहिये और गोबर की खाद आदि उचित मात्रा में मिला दें। इसके पश्चात् बीजों को सब्जी की किस्म के आधार पर निश्चित दूरी में बो देना चाहिए। बीजों को 1.5 सेमी से अधिक गहराई में नहीं बोना चाहिए अन्यथा अंकुरण होने में समस्या आती है और बीज देर से अंकुरित होते हैं। बीज बोते समय एक मुट्ठीभर डी.ए.पी. एवं बीज उगने के 5–6 दिन बाद यूरिया 2 मुट्ठी भर प्रति 10 वर्ग मीटर में लगाने से पौधों की बढ़वार अच्छी रहती है। बीज को क्यारियों में बोने के बाद हल्की सिंचाई करनी चाहिए। बुवाई के 1–2 हफ्ते में बीज अंकुरित हो जाते हैं और 1 महीने में रोपाई के लिए तैयार हो जाते हैं।

मधुमक्खी पालन

मधुमक्खी पालन भी एक आदर्श व्यवसायिक उपक्रम है जिसे किसान अधिक आय के लिये अपना सकते हैं। इसके लिये कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा 1–2 हफ्ते के प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। किसी भी आयु के युवक/युवतियों द्वारा इन्हें सीखकर 5000–6000 प्रति माह आसानी से कमाया जा सकता है। मधुमक्खी पालन के लिये अधिक स्थान की भी आवश्यकता नहीं होती व गांव में ही सडक़ के किनारे, खाली पड़ी भूमि, या कृषि योग्य भूमि के चारों ओर भी किया जा सकता है। आदर्श रूप से 1 हैक्टेयर में 5 – 10 मधुमक्खी कॉलोनी को विकसित किया जाता है। राजस्थान राज्य में इस उद्योग के लिये वृहद संभावनाए हैं। मधुमक्खी पालन को शुरू करने के लिए वसंत ऋतु का चुनाव करना चाहिये, हांलाकि शुष्क क्षेत्रों में अक्टूबर, नवम्बर का समय अधिक अनुकूल होता हैं। क्योंकि इस समय तापक्रम व मधुमक्खी के लिये पराग की उपलब्धता सरसो की फसल के कारण बहुतायत से

होती है। इस व्यवसाय के लिए चार तरह की मधुमक्खियां इस्तेमाल होती हैं। ये हैं– एपिस मेलीफेरा, एपिस इंडिका, एपिस डोरसाला और एपिस फ्लोरिया। इस व्यवसाय के लिए एपिस मेलीफेरा मक्खियां ही अधिक शहद उत्पादन करने वाली और स्वभाव की शांत होती हैं। इन्हें डिब्बों में आसानी से पाला जा सकता है। इस प्रजाति की रानी मक्खी में अंडे देने की क्षमता भी अधिक होती है। ह एक ऐसा व्यवसाय है, जिसे यदि किसी फूलवाली फसल के साथ किया जाए तो उसमें 20 से 80 प्रतिशत तक की बढ़ोतरी हो जाती है। पश्चिमी देशों में बढ़ती मांग को देखते हुए मधुमक्खी पालन की बुआई वाले क्षेत्रों में अच्छी–खासी संभावनाएं हैं। इसके अलावा, सूरजमुखी, गाजर, मिर्च, सोयाबीन, पॉपीलेनटिल्स ग्रैम, फलदार पेडमें जैसे नींबू, कीनू, आंवला, पपीता, अमरूद, आम, संतरा, मौसमी, अंगूर, यूकेलिप्टस और गुलमोहर जैसे पेडमें वाले क्षेत्रों में मधुमक्खी पालन आसानी से किया जा सकता है। जहां मधुमक्खियां पाली जाएं, उसके आसपास की जमीन साफ–सुथरी होनी चाहिए। बड़े चींटे, मोमभझी कीड़े, छिपकली, चूहे, गिरगिट तथा भालू मधुमक्खियों के दुश्मन हैं, इनसे बचाव के पूरे इंतजाम होने चाहिए। मधुमक्खी पालन के लिए एक बक्शे पर 500 रुपये की लागत आती है। जबकि एक फेम की कीमत 300 से 400 रुपये होती है। एक बक्से में एक सप्ताह में तकरीबन 8 किलोग्राम तक मधु का उत्पादन होता है। जिससे एक लाख से डेढ़ लाख तक की आय सलाना हो सकती है। फूलों का मौसम समाप्त हो जाने के उपरांत बक्शे की मधुमक्खियों को जिंदा रखने के लिए चीनी के चासनी की व्यवस्था करनी पड़ती है। आमतौर पर पचास डिब्बे वाली इकाई पर करीब दो लाख रुपए तक की लागत आती है, जिसमें डिब्बे खरीदने और उपकरणों का खर्च भी शामिल है। इस इकाई पर खर्च करके तीन से चार लाख रुपए कमाए जा सकते हैं। पिछले कुछ वर्षों में मधुमक्खी पालन की ओर लोगों का रुझान बढ़ा है। इस उद्योग के लिए सरकार ने राष्ट्रीयकृत बैंकों से लोन सुविधा उपलब्ध करवाई है। इस व्यवसाय के लिए 2 से 5 लाख रुपए तक का लोन उपलब्ध है, चूंकि यह उद्योग लघु उद्योग श्रेणी के अंतर्गत आता है। प्रशिक्षण संस्थान से जानकारी प्राप्त करना काफी सहायक होता है। इस उद्योग में कई तरह की जानकारी दी जाती हैं। मसलन, शहद उत्पन्न करने के लिए उचित वातावरण, नए–नए उपकरण एवं प्रबंध की जानकारी, उत्पादन के लिए उच्चकोटि की तकनीक, अधिक शहद देने वाली मधुमक्खियों की प्रजातियां, नस्ल सुधार एवं रोगों से बचने की सम्यक जानकारी तथा वैज्ञानिक विधि से मधुमक्खी पालन में नवनिर्मित तकनीक आदि का ज्ञान दिया जाता है। ल्यूपिन ह्यूपिन वेलफेयर एंड रिसर्च फाउंडेशन, कृष्णानगर, भरतपुर, राजस्थान, राष्ट्रीय बागबानी बोर्ड, लालकोठी, जयपुर, राजस्थान, मधुमक्खी पालन एंड शोध संस्थान कृषि विश्वविद्यालय, हिसार, हरियाणा, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, पूसा रोड, नई दिल्ली में वैज्ञानिक विधि से मधुमक्खी पालन की जानकारी दी जाती हैं। यह ऐसा व्यवसाय है, जो ग्रामीण क्षेत्र के विकास का पर्याय बन सकता है। इससे बहुत आसानी से ग्रामीण युवाओं की रोजगार की समस्या को सुलझाया जा सकता है।इस उद्योग को शुरू करने के लिये भलीभॉति प्रशिक्षण लेकर इसे एक आदर्श अतिरिक्त आय के स्त्रोत के रूप में शुरू किया जा सकता है।

केंचुआ खाद/वर्मीकम्पोस्ट बनाना

केंचुए को किसान का मित्र माना जाता रहा है ये प्राकृतिक रूप से भूमि की जुताई कर मिट्टी को भुरभुरा बनाते हैं व वायुसंचार तथा जल शोषण में वृद्धि करते हैं। एक किलो केंचुआ वर्ष भर में 50–60 किलो केंचुआ पैदा कर सकता है। केंचुआ खाद बनाने में खेती के सारे बेकार पदार्थों, जैसे डंठल, सड़ी घास, भूसा, गोबर, चारा आदि का प्रयोग हो जाता है। सब मिलाकर केंचुए से 60–70 दिनों में खाद तैयार हो जाती है। इस खाद की प्रति एकड़ खपत यूरिया की अपेक्षा एक चौथाई है। इसके प्रयोग से मिट्टी को नुकसान भी नहीं पहुंचता है। फसल की उत्पादकता भी 20–30 प्रतिशत बढ़ जाती है। केंचुआ खाद बनाने पर यदि किसान ध्यान दें तो वे अपने खेतों में प्रयोग करने के बाद इसे बेच भी सकते हैं। यह किसान भाईयों के लिए आमदनी का एक अतिरिक्त स्रोत भी हो सकता है। वर्मीकम्पोस्ट का भूमि में प्रयोग करने पर यह नाइट्रोजन 17.5–25 प्रतिशत, फास्फोरस 1.5–2.25 प्रतिशत व पोटाश 1.25–2.0 प्रतिशत तक प्रदान करते है। वर्मीकम्पोस्ट बनाने की विधि आसान व कृषि अपशिष्ट जैसे पत्ती, कचरा, डंठल आदि डालकर कम लागत में खेत पर ही की जा सकती है व छनी हुयी खाद को प्लास्टिक थैलियो या कंटेनर में भर कर बेचा जा सकता है। इसके लिये भी कृषि विज्ञान केन्द्रो व अनुसंधान संस्थाओं द्वारा प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। मिट्टी में रहनेवाला केंचुआ रोज अपने वजन के बराबर कचराधमिट्टी खाता है और उससे मिट्टी की तरह दानेदार खाद बनाता है। भूमि की उपरी सतह पर रहनेवाले लंबे गहरे रंग के केंचुए जो अधिकतर बरसात के मौसम में दिखाई पड़ते हैं, खाद बनाने के लिए उपयुक्त हैं। भूमि की गहरी सतह में रहनेवाले सफेद मोटे केंचुए खाद बनाने के

लिए उपयुक्त नहीं हैं। केंचुए जमीन भी बनाते हैं जिससे मिट्टी में हवा का वहन होता है एवं मिट्टी की पानी धारण करने की क्षमता बढ़ती है। 20 फुट लंबे 1 बेड में करीब 1000 किलो तक सड़ा हुआ कचरा डाला जा सकता है। इसमें शुरूआत में 1000 केंचुए डालना आवश्यक है। रोज बेड में हल्का–हल्का पानी छिड़कना आवश्यक है ताकि 50 से 60 प्रतिशत नमी कायम रहे और बेड का ताप केंचुए गर्मी बर्दाश्त नहीं कर सकते। उन्हें किसी भी प्रकार का कच्चा कचरा, कच्चा गोबर भोजन के रूप में नहीं दिया जा सकता। कच्चे गोबर के विघटन की प्रक्रिया के दौरान उससे गर्मी उत्पन्न हो सकती है जो केंचुओं के लिए हानिकारक होती है। अतरू हमारे खेत में उत्पन्न होने वाले कचरे एवं गोबर को अलग से सड़ाना आवश्यक है। इसके लिए पेड़ की छांव में 5′ ग्5′ ग 5′ फुट के ढेर बनाए जा सकते हैं। इस ढेर में कचरे का हर एक थर 5–7 इंच तक मोटा हो सकता है। हर एक थर को गोबर पानी से भिगोकर उस पर दूसरा थर चढ़ा सकते हैं। यदि सूखा अथवा ताजा गोबर उपलब्ध है तो कचरे के थर के उपर गोबर का एक थर (2–3 इंच) चढ़ाया जा सकता है। इसे भी नम करना आवश्यक है। इस तरह परत के उपर परत चढ़ाकर 5 फुट तक उंचा ढेर बनाया जा सकता है। पूरे ढेर को काले प्लास्टिक से ढंकना अनिवार्य है, यदि काला प्लास्टिक न हो तो पूरे ढेर को अच्छी तरह मिट्टी से ढंककर गोबर से लिपाई कर दें। ढेर में 2–3 दिन के अंतर से हल्का–हल्का पानी छिड़कना जरूरी है, ताकि नमी बनी रहे। 15 दिन बाद इस ढेर को पलटना जरूरी है ताकि उसकी गर्मी निकल जाए। 30 दिन बाद ढेर को अच्छी तरह फैला दें। उसकी गर्मी निकलने के बाद उसे वर्मी बेड में केंचुओ के भोजन के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है। इस तरह सड़ाया हुआ कचरा केंचुओ के लिये अच्छा भोजन है। मान 200 से 250 तक बना रहे। पूरे बेड को घास के पतले थर अथवा टाट की बोरियों से ढकना आवश्यक है ताकि सतह से नमी का वाष्पीकरण हो।

केंचुए सूर्य का प्रकाश एवं अधिक तापमान सहन नहीं कर सकते इसलिए केंचुआ खाद के उत्पादन के लिए छायादार जगह का होना आवश्यक है। यदि पेड़ की छाया उपलब्ध न हो तो लकड़ी गाड़कर कच्चे घास फूस का शेड बनाया जा सकता है। यदि बड़े पैमाने में व्यावसायिक स्तर पर खाद का उत्पादन करना हो तो पक्का टिन अथवा सिमेंट की चद्दर का उपयोग करके शेड बनाया जा सकता है। केंचुआ खाद उत्पादन के लिए वर्मी बेड बनाए जाते हैं जिसकी लंबाई 20 फुट तक हो सकती है किन्तु चौड़ाई 4 फुट से अधिक एवं ऊंचाई 2 फुट से अधिक नहीं होनी चाहिए। इस बेड में पहले नीचे की तरफ ईंट के टुकड़े (3"–4") फिर उपर रेत (2") एवं मिट्टी (3") का थर दिया जाता है जिससे विपरीत परिस्थिति में केंचुए इस बेड के अंदर सुरक्षित रह सके। इस बेड के ऊपर 6 से 12 इंच तक पुराना सड़ा हुआ कचरा केंचुओ के भोजन के रूप में डाला जाता है। 40 से 50 दिन के बाद जब घास की परत अथवा टाट बोरी हटाने के बादन हल्की दानेदार खाद ऊपर दिखाई पड़े, तब खाद के बेड में पानी देना बंद कर देना चाहिए। ऊपर की खाद सूखने से केंचुए धीरे–धीरे अंदर चले जाएंगे। ऊपर की खाद के छोटे–छोटे ढेर बेड में ही बनाकर एक दिन वैसे ही रखना चाहिए। दूसरे दिन उस खाद को निकालकर बेड के नजदीक में उसका ढेर कर लें। खाली किए गए बेड में पुनरू दूसरा कचरा जो केंचुओ के भोजन हेतु तैयार किया गया हो, डाल दें। खाद के ढेर के आसपास गोल घेरे में थोड़ा पुराना गोबर फैला दें और उसे गीला रखें। इसके ऊपर घास ढंक दें। इस प्रक्रिया में खाद में जो केचुएं रह गए हैं वे धीरे–धीरे गोबर में आ जाते हैं। इस तरह 2–3 दिन बाद खाद केंचुओं से मुक्त हो जाती है। बचे कचरे को केंचुओं सहित नजदीक के वर्मी बेड में डाल देते हैं। खाद को छानकर बोरी में फेंक कर दें अथवा छायादार जगह में एक गड्ढे में एकत्र करें और इस गड्ढे को ढककर रखें ताकि खाद में नमी बनी रहे। इस प्रकार एक बेड से करीब 500 से 600 किलो केंचुआ खाद 30–40 दिन में प्राप्त होती है।

मशरूम उत्पादन

मशरूम उत्पादन भी कम जगह व लागत लगाकर आसानी से किया जा सकता है। इसके लिये प्रशिक्षण कार्यक्रम राज्य सरकारों, कृषि विश्वविद्यालयों, कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा आयोजित किये जाते हैं। मशरूम उत्पादन के लिये प्रौद्योगिकी को भलीभाँति समझना अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके अभाव में अपेक्षित उत्पादन न होकर फसल रोगग्रस्त हो जाती है। परन्तु उपयुक्त विधि द्वारा इसकी खेती से 4000–5000 रू प्रतिमाह आसानी से कमाया जा सकता है। हिमाचल प्रदेश व दिल्ली में मशरूम उद्योग काफी फल फूल रहा है। बेरोजगार युवक व महिलाये इसे आसानी से अपना सकती हैं। सामान्य तकनीक से मशरूम उत्पादन करने वालो की अपेक्षा प्रशिक्षण लेकर आधुनिक तकनीकी द्वारा उत्पादन कर हिमाचल की कई कृषक महिलाओं ने अपना अलग ही स्थान बनाया है। जोधपुर, समस्तीपुर, रॉची,

हिसार, पंतनगर, लुधियाना, आदि स्थानों पर कृषि अनुसंधान केन्द्र व विश्व विद्यालयमें प्रशिक्षण कार्यक्रम समय समय पर आयोजित कराये जाते हैं। जिन किसान भाइयों के यहां मार्केट नजदीक नहीं है, उन्हें डिंगरी (ड्राई मशरूम) की फसल लेनी चाहिए। आज पूरी दुनिया में डिंगरी का 80 हजार करोड़ का बाजार है। जहां धान की फसल होती है, वहां इसकी खेती की संभावनाएं सबसे अधिक होती हैं क्योंकि इसकी खेती में पुआल का विशेष रूप से प्रयोग होता है। भारत में मशरूम उत्पादन का इतिहास लगभग तीन दशक पुराना है परंतु लगभग 10–12 वर्षो के दौरान मशरूम उत्पादन में लगातार वृध्दि दर्ज की गई है। मशरूम अपने उच्च स्तरीय खाद्य मूल्यों के कारण ही सम्पूर्ण विश्व में अपना एक विशेष महत्व रखता है। मशरूम में काफी मात्रा में प्रोटीन, फोलिक एसिड, विटामिन तथा मिनरल होते है। फोलिक एसिड का रक्तालपता (एनीमिया) को दूर करने में अपना चिकित्सीय महत्व है।मशरूम आहार के तौर पर उपयोग में लाया जाता है तथा फोलिक एसिड की उपस्थिति होने के कारण मशरूम एनीमिक रोगीयों के लिए लाभप्रद है। मशरूम पौष्टिक, रोगरोधक, स्वादिष्ट तथा विशेष महक के कारण आधुनिक युग का एक महत्वपूर्ण खाद्य आहार है। इनमें आईस्टर व दूधिया मशरूम मुखी हैं।

- **दूधिया मशरूमः** दूधिया मशरूम को अन्य मशरूम की तुलना में अधिक तापक्रम 25–35 से.ग्रे. पर उगाया जा सकता है। इस मशरूम को रिले फसल के रूप में अर्थात जब अन्य मशरूम के लिए उपयुक्त वातावरण मौजूद न हो, उस परिस्थिति में लिया जा सकता है। इस मशरूम की उत्पादन तकनीक सस्ती व सरल है एवं इसमें कम्पोस्ट की आवश्यकता नहीं होती है। इस मशरूम का आकार बहुत ही आकर्षक होता है एवं सफेद दूध के समान रंग होने से "दुध छत्ता" के नाम से भी जाना जाता है। इसमें खनिज तत्व भी अधिक मात्रा में मौजूद होते है। दूधिया मशरूम के उत्पादन के लिए फार्मेलिन 135 मि.ली. एवं 5 ग्राम बाविष्टीन दवा को 100 लीटर पानी में अच्छे से मिलाये। दवा मिश्रित पानी में 12 से 14 किलो गेहूँ भूसा या पैरा कुट्टी भिगाये एवं पालीथीन साट से ढंक दें। 8 से 10 घंण्टे बाद भीगे हुऐ उपचारित भूसे को टोकर या लोहे की जाली में ढंक कर अतिरिक्त पानी को निथार दिया जाता है । निथारे गए भूसे को साफ जगह पर पालीथीन सीट के ऊपर छायादार जगह में 2 घंटे के लिये फैला दिया जाता है जिससे अतिरिक्त नमी हवा से सूख जायें। भीगे भूसे का वजन लगभग 40 किलों हो जाता है इसे 10 भाग में विभाजित किर लिया जाता है। 5 किलों क्षमता की थैली में भूसे को 4 प्रतिशत् की दर से परत विधि द्वारा बिजाई करते हुऐ भरें एवं नाईलोन रस्सी से थैली का मुंह बांध दे एवं थैली के निचले हिस्से में सूजे से 4–5 छिद्र बना दें। थैली रखने के 24 घंटे पहले कमरों को 2 प्रतिशत् फार्मेलीन से छिड़काव करें। बीजयुक्त थैली को 28 से 32 डिग्री तापमान से छिड़काव करें। बीजयुक्त थैली को 28 से 32 डिग्री तापमान में रख दे। लगभग 22 से 25 दिन में फफूंद थैली में फैल जाता है। इसे स्पानिंग कहते है। कवकजाल फैले हुऐ वैगों में केसिंग मिट्टी (5–6 दिन पहले, खेत की मिट्टी एवं रेत का 1रू1) को 2 प्रतिशत् फार्मेलिन से उपचारित करने के बाद 4–5 से.मी. की परत चढायें। इस दौरान कमरे का तापमान 28 से 30 डिग्री बनाये रखें। मशरूम कलिकाऐं (पिन हेड) 5 से 6 दिन में बनने लगता है। इस अवस्था में कमरे का तापमान 30–32 डिग्री बनायें रखे तथा बैंगों में पानी का हल्का छिड़काव करें। पिन हेड आने के 4 से 6 दिन बाद दूधिया मशरूम पूर्णतया विकसित हो जाता है। पूर्ण विकसित मशरूम की तुड़ाई करें। पहली तुड़ाई के 8 से 10 दिन बाद पुनरू दूधिया मशरूम की फसल तैयार हो जाती है। इसी प्रकार तीसरी फसल प्राप्त करें।
- आयस्टर मशरूमः आयस्टर मशरूम को ढिंगरी के नाम से भी जाना जाता है। इस मशरूम की खेती लगभग वर्षभर की जा सकती है। इसके लिये अनुकूल तापक्रम 20–30 डिग्री सेन्टीग्रेट तथा आपेक्षित आद्रता 70–90 प्रतिशत होती है। आयस्टर मशरूम की खेती वैज्ञानिकों की राय में ग्रामीणों के उत्थान की एक सरल व सस्ती तकनीक है। आयस्टर मशरूम के उत्पादन के लिए 100 लीटर पानी में 5 ग्राम बाविष्टिन दवा एवं 125 मि.ली. फार्मेलिन को ठीक से मिला देते है। 12 किलों गेहूँ भूसा या धान की पैरा कुट्टी को 14–15 घंटे तक उपरोक्त दवा में भिगोते है। उपचारित भूसेध्पैरा कुट्टी को टोकनी या जाली के ऊपर पलट दे जिससे पानी पूरी तरह निकल जाए। निथारी गई पैराकुट्टी को साफ पालीथीन शीट पर 2–3 घंटे के लिए फैला देते है। उपचारित भूसाध्पैरा कुट्टी जब भीगकर 40 किलो वजन कम हो जाता है उसमें 3 प्रतिशत् की दर से मशरूम स्पॉन (बीज) को मिलाते है। 4 किलो स्पॉन मिले भूसे या पैरा कुट्टी को 5 किलो क्षमता की पालीथीन में भरकर

नाईलान रस्सी से बांध कर थैली के नीचे भाग पर सूजे द्वारा 4–5 छिद्र कर दिया जाता है। बैग रखने के 24 घंटे पहले कमरों को 2 प्रतिशत् फार्मेलिन से उपचारित किया जाता है तत्पश्चात् उपचारित कमरों में बीज युक्त थैलों को रेक पर रखते है। लगभग 15–20 दिन में कवकजाल पालीथीन में फैल जाता है। कवकजाल फैले हुऐ थैलों से पालीथीन को काट कर हटा दिया जाता है। फिर नाइलोन रस्सी से बांध कर इन बंडलों को रैक में लटका दिया जाता है। लटके बंडलो पर साफ पानी से हल्का छिड़काव करें एवं कमरे का तापक्रम 24–28 डिग्री तक एवं आर्द्रता 85–90 प्रतिशत तक बनाये रखें। प्रकाश के लिए 3–4 घंटे के लिए खिड़कियों को खोल दें या टयूबलाईट को 4–6 घंटे तक जलाये रखें। मशरूम कलिकायें 2–3 दिन में बन जाती है जो 3 से 4 दिन में तोड़ने योग्य हो जाती है। मशरूम कलिकायें जब पंख की आकार की हो जायें तब इन्हें मरोडकर तोड़ लिया जाता है। दूसरी फसल पहली तुडाई के 6–7 दिन बाद तैयार हो जाती है एवं तीसरी फसल दूसरी तुडाई के सात दिन बाद तैयार हो जाती है।

कृषि एवं उद्योग किसी भी देश की अर्थव्यवस्था की आधारशिला होते हैं और जब तक किसी भी देश में कृषि व उद्योग उन्नत स्तर पर नहीं होगें तब तक वह देश न तो उन्नति कर पायेगा और न ही उस देश के नागरिक आर्थिक रूप से सम्पन्न होगें। चूँकि भारत की अधिकांश जनसंख्या गाँवों में निवास करती है अंतरू जबतक ग्रामीण कृषि व उद्योगों का विकास नहीं होगा तब तक न तो गाँवों की उन्नति होगी और न ही हमारे देश का विकास सम्भव हो पायेगा।